श्रीमती ए. कंठमणि

बनाम

श्रीमती नसरीन अहमद

(दीवानी अपील सं. 2714/2008)

06 मार्च, 2017

[आर. के. अग्रवाल और अभय मनोहर सप्रे, जे.जे.]

विनिर्दिष्ट पालना:

वाद- बेचान इकरारनामा की विनिर्दिष्ट पालना हेतु - विचारण न्यायालय द्वारा वाद में डिक्री पारित की गई - अपील के दौरान प्रतिवादिनी द्वारा अपने अभिकथनों में यह कथन किया गया कि न्यायिक परिदृश्य में इकरारनामा गलत होने से घोषणात्मक निर्णय के अभाव में केवल मात्र विनिर्दिष्ट पालना के लिए वाद पोषणीय नहीं है - अभिनिर्धारित: संविदा की विनिर्दिष्ट पालना हेतु प्रस्तुत वाद में विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 16(ग) सपठित परिशिष्ट 'क' के संख्यांक संख्या 47 व 48 में वर्णित समस्त उपबंधो की पालना आवश्यक रूप से होनी चाहिए - वाद में उल्लेखित अभिकथनों में अनिवार्य रूप से परिसीमा अधिनियम की अनुसूची के बिंदु संख्या 54 में वर्णित समस्त उपबंध आवश्यक रूप से सम्मिलित होने चाहिए - वाद की पोषणीयता का अभिवाक प्रारंभिक विवाद्यक होने से

इस बिंदु को उच्चतम न्यायलय के समक्ष प्रथम बार उठाना पोषणीय नहीं है - वाद को परिसीमा अधिनियम की अनुसूची के बिंदु संख्या 54 में वर्णित समयावधि में प्रस्तुत किया गया जिस कारण वाद पोषणीय है - वादिनी द्वारा अभिकथन किया गया कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 16(ग) सपठित परिशिष्ट 'क' के संख्यांक संख्या 47 व 48 व परिसीमा अधिनियम की अनुसूची के बिंदु संख्या 54 - वादिनी द्वारा प्रतिफल की आधी राशि से अधिक का भुगतान प्रतिवादिनी को बेचाननामा की निष्पादन दिनांक से पूर्व कर दिया गया - वादिनी संविदा के अपने दायित्व को पूर्ण करने के लिए हमेशा तत्पर रही - विचारण न्यायालय द्वारा विवेकानुसार वादिनी के पक्ष में संविदा की विनिर्दिष्ट पालना की डिक्री पारित करना न्यायहित में है - धारा 16(ग) विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 - परिशिष्ट 'क' के संख्यांक संख्या 47 व 48, व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 - अनुसूची का बिंदु संख्या 54, परिसीमा अधिनियम, 1963

याचिका:

नये अभिवचन - प्रारंभिक मुद्दे के संबंध में - अभिनिर्धारित: वाद की पोषणीयता के संबंध में प्रथम बार में ही आपत्ति को उठाया जाना आवश्यक है - इस संबंध में नए अभिकथनों पर विचार नहीं किया जाएगा - जहाँ न्यायालय को प्रथम दृष्टया वाद के अवलोकन से ज्ञात होता है कि वाद विधि के किसी भी स्पष्ट प्रावधान द्वारा वर्जित है या किसी भी विधिक

प्रावधान के कारण विधिक रूप से पोषणीय नहीं है, तो न्यायालय उस वाद में न्यायिक प्रक्रिया के दुरूपयोग को रोकने के लिए न्यायिक अवेक्षा ले सकता है।

भारत का संविधानः

अनुच्छेद: 136-कार्यक्षेत्र: अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए उच्चतम न्यायालय साक्ष्य की विवेचना करने के लिए अनिच्छुक है - उससे भी अधिक तब जब अपील उस निर्णय से उत्पन्न होती है, जिसमें तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों को दर्ज किया है।

न्यायालय द्वारा अपील ख़ारिज करते हुए अभिनिर्धारित किया गया :-

1. किसी इकरार/संविदा की विनिर्दिष्ट पालना हेतु संस्थित वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16(ग) सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची के अनुच्छेद 54 में किया जाता है। व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 के परिशिष्ट 'क' के संख्यांक संख्या 47 व 48 में ऐसे वाद के लिए वाद का प्रारूप निर्धारित किया गया है। विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877, जिसे 1963 के अधिनियम द्वारा निरस्त कर दिया गया था, में धारा 16 (ग) के अनुरूप प्रावधान नहीं थे। उसके उपरांत भी इस तरह के किसी प्रावधान के अभाव में इसकी आवश्यकता को विनिर्दिष्ट पालना के लिए संस्थित वाद में अनिवार्य माना जाता था। 1963 के अधिनियम के द्वारा धारा 16(ग) को अधिनियमित करके उपरोक्त

आवश्यकता को वैधानिक बना दिया। इसलिए, हर वह वाद जिसमें इकरार/संविदा की विनिर्दिष्ट पालना का अनुतोष माँगा जाता है, धारा 16(ग) सपठित व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 के परिशिष्ट 'क' के संख्यांक संख्या 47 व 48 की सभी मांगों को पूरा होना चाहिए। (पद संख्या 23-26) [619 ए-बी, जी, 620 डी-ई]

अरधीशिर एच. मामा बनाम फ्लोरा शेशन ए आई आर 1928 पीसी 208 - में उल्लेख हुआ।

2. परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 के अंतर्गत संविदा/इकरार की विनिर्दिष्ट पालना के लिए वाद दायर करने के लिए 3 वर्ष की समयावधि निहित है। पक्षकारों द्वारा नीयत दिनांक से 3 साल की अवधि की गणना की जानी चाहिए, यदि ऐसी दिनांक नीयत नहीं की गयी है, तो वादिनी को पालना के अस्वीकार होने की सूचना की दिनांक से गणना की जानी चाहिए। इसलिए, वाद में अनुच्छेद 54 की पूर्ति करने के लिए आवश्यक अभिवचन भी होना चाहिए। [पद 27] [620 ई-एफ]

3. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16(ग) के समावेशन से पहले भी "तत्परता और इच्छा" की अभिव्यक्ति कई मामलों में व्याख्या की विषयवस्तु रही है। वादिनी के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपनी तत्परता और इच्छा को साबित करने के लिए धनराशि

प्रस्तुत करे या लेन-देन के वित्तपोषण के लिए एक पूर्ण योजना की पुष्टि करे। [पद 28] [620 जी-एच; 621-ए]

बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड एवं अन्य बनाम जमसेत जी ए. एच. चिनॉय और चिनॉय एवं कम्पनी एआईआर 1950 पीसी 90; सुखबीर सिंह व अन्य बनाम ब्रजपाल सिंह व अन्य एआईआर 1996 एससी 2510: (1997) 2 एससीसी 2000: (1996) 2 पूरक एससीआर 863 - में उल्लेख हुआ।

4. अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए उच्चतम न्यायालय साक्ष्य की विवेचना के लिए अनिच्छुक है। जहाँ इस तरह की अपील ऐसे निर्णय से उत्पन्न होती हो, जिसमें तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष दर्ज किए गए हो। वर्तमान मामले में यह पता लगाने की दृष्टि से साक्ष्य का अध्ययन करना उचित होगा कि क्या विवादित निर्णय तथ्यों या/और कानून में किसी त्रुटि से ग्रस्त है? [पद संख्या 32,33] [622-डी-एफ]

5. वाद की पोषणीयता के बारे में आपत्ति न तो प्रतिवादिनी द्वारा लिखित बयान में और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील में और न ही इस न्यायालय में अपील के आधार पर उठायी गयी थी। चूंकि लिखित अभिवचन में कोई अभिकथन नहीं किया गया था, इसलिए कोई विवाद्यक नहीं बनाया गया और इसके परिणामस्वरूप न तो विचारण

न्यायालय और न ही उच्च न्यायालय याचिका पर कोई निष्कर्ष निकाल सके। यह कानून का एक अच्छी तरह से सुस्थापित सिद्धांत है कि वाद की पोषणीयता को प्रथम सुनवाई में याचिका अथवा लिखित अभिवचन में उठाया जाना आवश्यक है, तभी ऐसी याचिका पर विचारण न्यायालय द्वारा व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 14 नियम 2 के तहत प्रारंभिक विवाद्यक के रूप में गुण-दोष पर निर्णय लिया जा सकता है। एक बार याचिका पर निष्कर्ष निकालने के पश्चात् उसी की जांच प्रथम या द्वितीय अपीलीय न्यायालय द्वारा की जा सकती है। यह केवल ऐसे उचित मामलों में जहां न्यायालय को प्रथम दृष्टया मामला केवल वाद के अवलोकन से मालूम होता है कि वाद कानून के किसी भी स्पष्ट प्रावधान द्वारा वर्जित है या किसी भी कानूनी प्रावधान के कारण कानूनी रूप से पोषणीय नहीं है, ऐसे समस्त वाद में न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग से बचने के लिए न्यायिक अवेक्षा को उपयोग में लिया जा सकता है। हालाँकि, वर्तमान वाद में ऐसा नहीं है। [पद संख्या 35-38] [622-जी-एच, 623 ए-बी]

मृतक आई.एस. सिकंदर (मृतक) के वारिसान बनाम वी.के सुब्रमणी व अन्य (2013) 15 एससी 27: [2013] 17 एससीआर 24 - पृथक है।

6. प्रत्यर्थी द्वारा दायर वाद जो अनुबंध दिनांक 05.03.1989 के विनिर्दिष्ट अनुतोष की पालना का होने के कारण से पोषणीय था। वाद दायर करने का, वाद-हेतुक परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 में वर्णित किए

गए पालना के लिए अनुबंध में उल्लिखित अवधि की समाप्ति दिनांक 31.12.1989 पर उत्पन्न हुआ था और इसके 10 दिनों के भीतर वाद दायर किया गया था। [पद संख्या 40] [623-डी]

7. वादिनी द्वारा अपने अभिकथनों में विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16(ग) सपठित परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 तथा व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 के परिशिष्ट 'क' के संख्यांक संख्या 47 व 48 की अनिवार्य आवश्यकताओं के अनुरूप किया। प्रतिवादिनी ने वादिनी के साथ हुए अनुबंध के निष्पादन पर विवाद नहीं किया और वास्तव में, उसमें कुछ भाग को शामिल करने के लिए वादिनी के साथ पत्राचार किया। वादिनी ने अनुबंध के अपने भाग को पूरा करने के लिए अपनी तत्परता और इच्छा को साबित किया और पर्याप्त सबूत पेश करके वादग्रस्त संपत्ति खरीदने की अपनी वित्तीय क्षमता को भी साबित किया। स्वीकार किए गए तथ्यों पर वादिनी ने संविदा के निष्पादन की नीयत तारीख से पहले प्रतिवादिनी को प्रतिफल का 50 प्रतिशत से अधिक भुगतान किया था। वादिनी ने यह भी साबित कर दिया था कि उसके पास प्रतिवादिनी को शेष प्रतिफल देने के लिए आवश्यक वित्तीय क्षमता थी क्योंकि वादिनी द्वारा जीवन बीमा निगम से ऋण प्राप्त कर लिया गया था। वादिनी ने अपनी तत्परता और संपत्ति खरीदने की इच्छा दिखाने के लिए अवधि समाप्त होने पर 10 दिनों के पूर्व वाद दायर किया। जब यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रतिवादिनी ने निष्पादित अनुबंध की पालना से इंकार कर अनुबंध भंग

किया है, जबकि वादिनी ने अनुबंध के अपने भाग की पालना की और अपने जिम्मे की पालना के लिए तत्पर और इच्छुक रही तो विचारण न्यायालय द्वारा वादिनी के पक्ष में अपने विवेक का प्रयोग करते हुए विनिर्दिष्ट पालना की डिक्री पारित करना न्यायसंगत था। इनमें से किसी भी निष्कर्ष को या तो विकृत या सबूत के खिलाफ या कानून के किसी भी प्रावधान के खिलाफ होने के रूप में नहीं समझा जा सकता है और न ही इन निष्कर्षों को इस आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है कि कोई भी न्यायिक विचारक कभी भी इस प्रकार के निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते हैं। [पद संख्या 43,44] [623 एफ-एच, 624-ए-डी]

8. इस दलील को कायम रखने के लिए कोई सबूत नहीं है कि वादिनी न्यायालय में साफ हाथों से नहीं आई थी। दूसरी ओर, प्रतिवादिनी द्वारा वादिनी से पर्याप्त राशि (50 प्रतिशत से अधिक) प्राप्त करने के बावजूद कुछ न कुछ झूठे बहाने बनाकर कर बेचाननामे के निष्पादन को टालती रही। [पद संख्या 45,46] [623 ई]

9. यह कहना भी सही नहीं है कि चूंकि वादिनी द्वारा कुछ अन्य हिस्सों के विक्रय विलेख के निष्पादन पर जोर दिया गया जो अनुबंध का भाग नहीं थे, यह माना जाना चाहिए था कि वादिनी ने अनुबंध का उल्लंघन किया है न कि प्रतिवादिनी ने। विचारण न्यायालय व उच्च न्यायालय ने उचित रूप से अभिनिर्धारित किया कि वादिनी ने उस संपत्ति

के संबंध में किसी भी राहत का दावा नहीं किया जो अनुबंध का विषय नहीं था और अपनी राहत को केवल उस संपत्ति के संबंध में सीमित किया जो अनुबंध दिनांक 05.03.1989 की विषय वस्तु थी। [पद संख्या 47,48] [624 एफ-एच; 625 ए]

निर्दिष्ट निर्णय

[2013] 17 एससीआर 24	पृथक् माना गया	पद संख्या 17
AIR 1928 पीसी 208	उल्लिखित किया गया	पद संख्या 24
AIR 1950 पीसी 90	भरोसा किया गया	पद संख्या 28
[1950]2 पूरक एससीआर 863	भरोसा किया गया	पद संख्या 30

दीवानी अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील सं. 2714/2008

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा ए. एस. संख्या 127/2000 में पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 27.10.2006 के सम्बन्ध में।

मोहन परासरन, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्रीमती प्रभा स्वामी, निखिल स्वामी, सुश्री गायत्री वी. ई., अधिवक्तागण, अपीलार्थी की ओर से।

आर. बालासुब्रमण्यम, वरिष्ठ अधिवक्ता, बी. करुणाकरन, सेंथिल जगदीशन, गोविंद मनोहरन, सुश्री श्रुति लायर, अधिवक्तागण, प्रत्यर्थी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय न्यायधीश अभय मनोहर सप्रे,जे. द्वारा दिया गया :-

1. यह याचिका प्रतिवादिनी द्वारा ए. एस. सं. 127/2000 में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और अंतिम आदेश के विरुद्ध दायर की गयी है। जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया था, जिसमें ओ. एस. सं. 6420/1996 में आठवें अतिरिक्त न्यायाधीश, सिटी सिविल कोर्ट, चेन्नई द्वारा पारित डिक्री और निर्णय की पुष्टि की गई थी, जिसने विनिर्दिष्ट पालना के लिए प्रत्यर्थी के वाद में आदेश अपीलार्थी के विरुद्ध अनुबंध के निष्पादन के लिए पारित किया था।

2. इस अपील में अन्तर्विलित विवाद्यक से विवेचित करने के लिए हम यहां तथ्यों को संक्षेप में रख रहे हैं।

3. अपीलार्थी-प्रतिवादिनी 191, लॉयड्स रोड, चेन्नई-86 पर स्थित संपत्ति की मालकिन है। उसने एक अनुबंध दिनांक 05.03.1989 को प्रत्यर्थी के साथ वाद की अनुसूची बी में वर्णित विवादित संपत्ति के भूतल के एक हिस्से तथा अनुसूची अ में वर्णित संपत्ति में एक तिहाई अविभाजित हिस्से के सम्बन्ध में रुपये 3,43,200/- के प्रतिफल की एवज में किया। उसी दिन, रु 1,30,000/ - प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी को अग्रिम राशि के रूप में भुगतान किया गया था। इसके बाद प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी को दिनांक

03.04.1989 को रु 20,000/-, दिनांक 04.05.1989 को रु 10,000/-, दिनांक 03.07.1989 को रु 15,000/-, दिनांक 06.07.1989 को रु 15,000/- और दिनांक 16.08.1989 को रु 16,000/- का भुगतान किया गया। जहाँ तक शेष राशि का संबंध है, प्रत्यर्थी उसी राशि का भुगतान दिनांक 31.12.1989 या उससे पहले करने हेतु सहमत हुई। यह आरोप लगाया गया था कि अपीलार्थी मौखिक रूप से प्रत्यर्थी को 132.25 वर्ग फुट का एक अतिरिक्त हिस्सा बेचने के लिए भी सहमत हो गई थी जो भूतल और चार अविभाजित हिस्से थे और उस अतिरिक्त संपत्ति के लिए प्रत्यर्थी ने अग्रिम राशि के रूप में रु 46,000/- की राशि का भुगतान किया।

4. प्रत्यर्थी द्वारा दिनांक 10.11.1989 को 847.25 वर्ग फुट हिस्सा और एक आधा अविभाजित भाग की सम्पति के लिए अपीलार्थी को विक्रय विलेख का एक मसौदा भेजा गया था। हालाँकि अपीलार्थी अतिरिक्त भूमि बेचने के लिए मौखिक रूप से सहमत हो गई थी परन्तु उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया और प्रत्यर्थी की मंजूरी के लिए दिनांक 04.12.1989 को विक्रय विलेख का मसौदा वापस कर दिया, जिसमें उसके द्वारा अतिरिक्त भूमि के लिए भुगतान की गई रु 46,000/- की राशि को पूर्व लिखित अनुबंध के लिए अतिरिक्त अग्रिम राशि माना गया।

5. तत्पश्चात दिनांक 15.12.1989 को अपीलार्थी द्वारा बिंदु 18 और 27 को हटाकर मामूली परिवर्तनों के साथ प्रत्यर्थी के अनुमोदन के लिए

विक्रय विलेख का एक और मसौदा भेजा गया। चूँकि ये हटाए गए बिंदु अनुबंध के बिंदु 17 और 24 का अनुसरण करते हैं, इसलिए प्रत्यर्थी ने पहले मसौदे को मंजूर किया जिसमें यह बिंदु शामिल थे।

6. अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को दिनांक 27.12.1989 को एक पत्र लिखा जिसमें उसने दिनांक 31.12.1989 या उससे पहले दूसरे मसौदे को मंजूर करने के लिए प्रत्यर्थी पर जोर दिया।

7. प्रत्यर्थी ने दूसरे मसौदे को मंजूरी दी और इसे स्पीड पोस्ट द्वारा दिनांक 28.12.1989 को अपीलार्थी को भेजा और उसके द्वारा प्राप्त किये गए 1 लाख रुपये के ऋण को दर्शाने वाला जीवन बीमा निगम का एक पत्र भी संलग्न किया। प्रत्यर्थी द्वारा यह भी दर्शाया गया कि वह प्रतिफल की शेष राशि विक्रय विलेख के पंजीकरण के समय अदा कर देगी।

8. प्रत्यर्थी ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से दिनांक 30.12.1989 को एक विधिक नोटिस भेजा जिसमें अपीलार्थी से दिनांक 10.01.1990 या उससे पहले विक्रय विलेख को प्रत्यर्थी के हक में निष्पादित करने और पंजीकृत कराने का कहा गया था।

9. अपीलार्थी द्वारा अपने अधिवक्ता के माध्यम से दिनांक 03.01.1990 को एक पत्र प्रत्यर्थी को भेजा गया जिसमें अपीलार्थी द्वारा अनुबंध को रद्द करते हुए सम्पति बेचने से इनकार कर दिया गया।

10. तत्पश्चात प्रत्यर्थी द्वारा संविदा की विनिर्दिष्ट पालना हेतु दिनांक 10.01.1990 को अपीलार्थी के विरुद्ध वाद दायर किया। इसमें उपरोक्त अभिवचन शामिल थे। यह आरोप लगाया गया था कि प्रत्यर्थी अनुबंध के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और तत्पर है और उसने वास्तव में ऐसा किया है। अपीलार्थी द्वारा ही बिना किसी पर्याप्त व माकुल कारण के अपने भाग की पालना नहीं करने तथा अनुबंध को भंग करने से प्रत्यर्थी को विवादित सम्पति के संबंध में संविदा की विनिर्दिष्ट पालना हेतु वाद संस्थित करने का वाद हेतुक उत्पन्न हुआ। अपीलार्थी ने लिखित कथन पेश किए।

11. दावा और लिखित कथन पर विचार करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पांच विवाद्यक और एक अतिरिक्त विवाद्यक बनाया गया जो इस प्रकार हैं:-

1) क्या यह सत्य है कि प्रत्यर्थी द्वारा 132.25 वर्ग फुट की अनुसूचित भूमि तथा आधा अविभाजित भाग को बेचने के लिए सहमत हुई?

2) क्या यह सत्य है कि संविदा के लिए समय एक सार है?

3) क्या यह सत्य है कि वादिनी अनुबंध के अपने भाग की पालना के लिए सदैव तैयार थी?

4) क्या वादिनी विनिर्दिष्ट पालना की हकदार है?

5) वादिनी किस राहत की हकदार है?

अतिरिक्त विवाद्यक दिनांक 31.07.1998 को विचरित किया।

1) क्या वादिनी ने विरोधाभासी तरीके से काम करते हुए अनुबंध का उल्लंघन किया?

12. दोनों पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्य का अवलोकन करने के बाद विचारण न्यायालय द्वारा 1996 के ओ. एस. संख्या 6420 में दिनांक 30.10.1998 को निर्णय और डिक्री पारित करते हुए प्रत्यर्थी के वाद को डिक्री किया और अपीलार्थी के विरुद्ध संविदा की विनिर्दिष्ट पालना के लिए डिक्री पारित की गयी। यह माना गया कि संविदा के लिए समय का सार नहीं था। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि वादिनी (प्रत्यर्थी) हमेशा संविदा को पूरा करने तथा अपने भाग को पूर्ण करने के लिए तत्पर और इच्छुक थी और जबकि प्रतिवादिनी (अपीलार्थी) जिसने संविदा से भागने की कोशिश की। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि प्रत्यर्थी विनिर्दिष्ट पालना के लिए डिक्री का हकदार है। विवादित संपत्ति के संबंध में दिनांक 05.03.1989 के विक्रय करार के आधार पर संविदा की और तदनुसार अपीलार्थी को विक्रय विलेख को निष्पादित करने के लिए दो माह का समय दिया गया और प्रत्यर्थी को शेष प्रतिफल की राशि 1,47,200/- रु जमा करने के लिए एक माह का समय दिया गया।

13. उपरोक्त निर्णय से आहत होकर प्रतिवादिनी ने उच्च न्यायालय में अपील संस्थित की। उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय द्वारा दिनांक 27.10.2006 को अपील को ख़ारिज कर दिया और विचारण न्यायालय के द्वारा दिनांक 30.10.1998 को पारित किया गया निर्णय एवं डिक्री 1996 के ओ. एस. सं. 6420 की पुष्टि की।

14. उक्त निर्णय के विरुद्ध, अपीलार्थी (प्रतिवादिनी) द्वारा इस न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका के माध्यम से यह अपील दायर की है।

15. अपीलार्थी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मोहन परासरन और प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. बालासुब्रमण्यम को सुना गया।

16. अपीलार्थी के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मोहन परासरन ने अपनी बहस में आलोच्य निर्णय की वैधता एवं यथार्थता हेतु तीन बिन्दुओ पर आवश्यक विशेष जोर दिया था।

17. सबसे पहले, विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदित किया गया कि चूंकि प्रत्यर्थी (वादिनी) ने घोषणा की मांग नहीं की थी कि अनुबंध को रद्द करना विधि विरुद्ध है तथा केवल विनिर्दिष्ट पालना के लिए वाद दायर करना पोषणीय नहीं था और इसलिए, वाद इसी आधार पर खारिज किया जा सकता था। दूसरे शब्दों में, निवेदन यह था कि प्रत्यर्थी (वादिनी) के

लिए यह अनिवार्य था कि उसको वाद में यह घोषणा करने की मांग करनी थी कि अपीलार्थी (प्रतिवादिनी) द्वारा दिनांक 03.01.1989 को संविदा रद्द करने के लिए भेजा गया विधिक नोटिस विधि विरुद्ध है और इस राहत के साथ, प्रत्यर्थी (वादिनी) को वाद दायर करते हुए विनिर्दिष्ट पालना की राहत का भी दावा करना चाहिए था। इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी (वादिनी) को संविदा की विनिर्दिष्ट पालना के लिए वाद दायर करना था जिससे वह वाद पोषणीय भी रहता। यह आग्रह किया गया था कि चूंकि वादिनी द्वारा इस तरह की राहत का दावा नहीं किया गया, इसलिए संविदा की विनिर्दिष्ट पालना के लिए वाद पोषणीय नहीं था। इस निवेदन के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता द्वारा आई. एस. सिकंदर (मृत) के विधिक वारिसान बनाम के. सुब्रमण्यन और अन्य (2013) 15 एससीसी-271 में पारित इस न्यायालय के निर्णय का अवलंबन लिया।

18. दूसरे स्थान पर विद्वान अधिवक्ता द्वारा गुणावगुण के आधार पर निष्कर्षों पर आक्षेप किया गया और पक्षकारों के द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की ओर ध्यान केन्द्रित करते हुए यह इंगित किया गया कि दोनों अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की गयी कि वादिनी अनुबंध के अपने भाग का पालन करने के लिए तत्पर और रजामंद थी। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि साक्ष्य से, यह स्पष्ट है कि वादिनी, न तो अनुबंध के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार थी और न ही संविदा का पालन करते हुए विक्रय विलेख का निष्पादन करवाने के लिए

उसके पास शेष प्रतिफल राशि का भुगतान करने के लिए पर्याप्त धनराशि थी। यह आग्रह किया गया था कि वादिनी न्यायालय के समक्ष साफ़ हाथो से नहीं आई और उसने उन शर्तों पर बल दिया, जिन पर न तो सहमति हुई थी और न ही वे अनुबंध का हिस्सा थे।

19. तीसरे स्थान पर, विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि चूंकि दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने साक्ष्य को उचित रूप से विवेचित नहीं किया और वह भी उस वाद में जहां वादिनी बदनियति के साथ न्यायालय में आई थी। ऐसे वादिनी को संविदा की विनिर्दिष्ट पालना को प्रदान करने के लिए विवेकाधीन राहत नहीं दी जानी चाहिए थी और इसके बजाय वाद को गुण-अवगुण पर खारिज किया जाना चाहिए था।

20. उपरोक्त तीनों बिंदुओं के जवाब में, प्रत्यर्थी (वादिनी) के विद्वान अधिवक्ता ने अपील का विरोध करते हुए तर्क दिया कि आक्षेपित निर्णय में किसी भी हस्तक्षेप का कोई आधार नहीं है। यह उनका निवेदन था कि अधीनस्थ न्यायालयों ने उचित रूप से अभिनिर्धारित किया कि वादिनी ने प्रतिवादिनी द्वारा किए गए अनुबंध के भंग को साबित कर दिया था और इसके अतिरिक्त उसने अनुबंध के अपने जिम्मे की पालना की थी, "तत्परता और रजामंदी" दोनों आवश्यकता को पूरा कर दिया था जो विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16 (ग) के तहत प्रावधित है। विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया कि चूंकि वाद की पोषणीयता से

संबंधित बिंदु न तो लिखित कथन में उठाया गया था न ही उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में उठाया गया था और न ही इस अपील में यह बिंदु उठाया गया था। पहली बार इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अभिकथनों में उठाया गया था, इसलिए इस न्यायालय में पहली बार इस बिंदु को उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी। अंत में, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि चूंकि दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने वादिनी के पक्ष में सभी विवाद्यक तथ्यों पर उचित साक्ष्य का अवलोकन करते हुए उत्तर दिया। ऐसे निष्कर्ष समवर्ती होने के कारण इस न्यायालय के लिए भी बाध्यकारी हैं। यह तब और भी जबकि उक्त निष्कर्ष दुराग्रह से ग्रसित नहीं हैं या अवैधानिक नहीं थे इस कारण इस न्यायालय द्वारा किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

21. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को सुनने और रिकॉर्ड के अवलोकन पर, हम अपीलार्थी (प्रतिवादिनी) के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा किसी भी अभिकथन में कोई प्रभाव नहीं पाते हैं।

22. अपील में सम्मिलित विवाद्यकों का परिक्षित करने के लिए व अपील में आगे बढ़ने से पहले, अधिनियमों के कुछ प्रासंगिक प्रावधानों और न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों पर ध्यान देना आवश्यक है, जो कि विवाद पर लागु होती है।

23. संविदा की विनिर्दिष्ट पालना के लिए संस्थित वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम धारा 16 (ग) सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की अनुसूची के अनुच्छेद 54 के प्रावधानों के अधीन है। व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 के परिशिष्ट 'अ' के संख्यांक 47 व 48 में इस प्रकार के वाद के लिए याचिका का प्रारूप निर्धारित किया गया है।

24. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 में धारा 16 (ग) के अनुरूप प्रावधान नहीं थे, जो 1963 के अधिनियम द्वारा सम्मिलित कर दिया गया था। उसके उपरांत भी इस तरह के किसी प्रावधान के अभाव में प्रिवी काउंसल द्वारा अर्देशिर एच. मामा बनाम फ्लोरा सासून, ए. आई. आर. 1928 पी. सी. 208 के प्रसिद्ध मामले में निर्धारित कानून के आधार पर विनिर्दिष्ट पालना के लिए संस्थित वाद में 1877 के अधिनियम उक्त प्रावधान की आवश्यकताओं को अनिवार्य माना गया जो भारतीय न्यायालयों से प्रिवी काउंसिल से आया, जिसमें न्यायाधिपति ने निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किएः

> "दूसरी ओर विनिर्दिष्ट पालना के लिए संस्थित किसी भी वाद में न्यायालय द्वारा उन्हें अनुबंध को अस्तित्व में रखने के लिए निर्देशित किया गया था। उसे उस वाद में अभिकथन करना था, और अगर तथ्य को लाँघ लिया गया था तो उसे अनुबंध की दिनांक से लेकर सुनवाई के समय

तक अनुबंध के अपने भाग को पूरा करने के लिए निरंतर तत्परता और रजामंदी साबित करने की आवश्यकता थी। उस कथन को साबित करने में विफल होने के कारण वाद अपरिहार्य रूप से खारिज कर दिया गया था। इस प्रकार यह कि हर्जाने के लिए कार्रवाई की शुरुआत, क्लॉ बनाम लंदन और उत्तर पश्चिमी रेलवे कं. (1871) एल. आर. 7 एक्स. 26 और लॉ बनाम लॉ (1905) 1 अध्याय 140 जैसे मामलों के सिद्धांत पर की गई थी। जिनमें अनुबंध को अंतिम स्तर पर मानते हुए विनिर्दिष्ट पालना के लिए किसी भी वाद में पूर्व में की गयी कार्यवाही में जो कुछ भी हुआ, उसके बाद पीड़ित वादी द्वारा वाद कायम नहीं रखा जा सकता था। उन्होंने अपने मत से खुद को केवल उस कथन को प्रस्तुत करने से रोक दिया था जिसका उल्लेख उनके वाद की सफलता के लिए आवश्यक था। विनिर्दिष्ट पालना के लिए पूर्व में संस्थित वाद के उल्लंघन के लिए नुकसान की कार्रवाई पर प्रभाव स्पष्ट होगा जब इस तरह के वाद में हर्जाना देने के लिए स्वयं न्यायालय की क्षमता पर प्रश्न उठाया गया हो।"

25. तब 1963 के अधिनियम ने धारा 16 (ग) को अधिनियमित करके उपरोक्त आवश्यकता को वैधानिक बना दिया, जो निम्नानुसार हैः -

"16. अनुतोष का वैयक्तिक वर्जन -संविदा की विनिर्दिष्ट पालना किसी ऐसे व्यक्ति के पक्ष में नहीं कराया जा सकता -

(क) .....

(ख) .....

(ग) जो यह प्रकथन और साबित करने में असफल रहे कि उसके संविदा के उन निबंधनों से भिन्न जिनका पालन प्रतिवादी द्वारा निवारित अथवा अधित्यक्त किया गया है ऐसे मर्मभूत निबंधनों का, जो उनके द्वारा पालन किए जाने हैं, उनके पालन कर दिया है अथवा पालन करने के लिए वह सदा तत्पर और रजामंद रहा है।

स्पष्टीकरण - खंड (ग) के प्रयोजनों के लिए -

(1) जहां कि संविदा में धन का संदाय अंतर्वलित हो, वादी के लिए आवश्यक नहीं है कि वह प्रतिवादी को किसी धन का वास्तव में निविदान करे या न्यायालय में निक्षेप करे सिवाय जबकि न्यायालय ने ऐसा करने का निर्देश दिया हो;

(2) वादी को यह प्रकथन करना होगा कि वह संविदा का उसके शुद्ध अर्थान्वयन के अनुसार पालन कर चुका है, अथवा पालन करने को तैयार और रजामंद है।"

26. इसलिए, जो याचिका समझौते/अनुबंध की विनिर्दिष्ट पालना का अनुतोष चाहती है, उसमें विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम धारा 16 (ग) सपठित व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 के परिशिष्ट 'अ' के संख्यांक 47 व 48 की सभी आवश्यकताएं आवश्यक रूप से सम्मिलित होनी चाहिए।

27. परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 में अनुबंध/समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए वाद संस्थित करने के लिए 3 साल की अवधि का प्रावधान है। पक्षकारों द्वारा पालना हेतु नीयत दिनांक से 3 साल की अवधि की गणना की जानी चाहिए। यदि ऐसी कोई दिनांक नीयत नहीं है, तो वह दिनांक जब वादिनी को ज्ञात हो कि पालना से इनकार कर दिया गया है। इसलिए, वाद में अनुच्छेद 54 की आवश्यकता की पूर्ति हेतु आवश्यक अभिवचन भी होना चाहिए।

28. अभिव्यक्ति "तत्परता और इच्छा" विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16 (ग) में समावेशित होने से पहले भी कई मामलों में व्याख्या का विषय रही है। इस प्रश्न की जांच करते समय कि कैसे और किस तरीके से, वादिनी को अपनी वित्तीय सक्षमता सिद्ध करने की आवश्यकता है ताकि वह अनुबंध/समझौते की विनिर्दिष्ट पालना हेतु वाद

संस्थित करने में सक्षम हो सके, प्रिवी काउंसिल के एक प्रमुख मामले में जो बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड और अन्य बनाम जमशेतजी ए. एच. चिनॉय एंड कंपनी, ए.आई.आर. 1950 पी.सी. 90 में भारतीय न्यायालयों (बॉम्बे) में उठा था जिसमें न्यायाधिपति ए. सी. चागला द्वारा दिए गए विचार को स्वीकृति दी और अन्य बातों के साथ यह भी माना कि "वादिनी के लिए अपनी तत्परता व इच्छा सिद्ध करने के लिए धनराशि प्रस्तुत करना या ऋण सम्बन्धी दस्तावेज प्रस्तुत आवश्यक नहीं है।

29. निम्न पर्यवेक्षक प्रिवि काउंसिल के विपरीत है:

> "21.....न्यायाधिपतिगण इस निष्कर्ष और उन आधारों से सहमत हैं जिन पर यह आधारित था।यह सच है कि वादी संख्या 1 ने कहा कि वह अपने लिए खरीद रहा था, कि उसके पास कीमत को पूरा करने के लिए पर्याप्त धन तैयार नहीं था और अस्वीकृति के समय उक्त धन के लिए कोई निश्चित व्यवस्था नहीं की गई थी।लेकिन खुद को तैयार और रजामंद होना साबित करने के लिए खरीदार को धन प्रस्तुत करना या लेनदेन के वित्तपोषण के लिए किसी संपन्न योजना की पुष्टि करना आवश्यक नहीं है।प्रश्न तथ्यों का है और वर्तमान मामले में अपीलीय न्यायालय के पास उस दृष्टिकोण को खोजने के लिए पर्याप्त सामग्री थी जिस

पर वह पहुंचा था।इस संबंध में उनका आधिपत्य केवल यह जोड़ना होगा कि वे न्यायाधिपति ए. सी. चागला से पूरी तरह सहमत हैं जब वे कहते हैं:

"मेरी राय में, रिकॉर्ड पर पहले से मौजूद साक्ष्य के आधार पर न्यायालय के लिए यह निष्कर्ष निकालना पर्याप्त था कि वादी संख्या 1 अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और रजामंद था। उसके लिए 'वास्तविक आंकड़ों को प्रस्तुत करना तथा न्यायालय को संतुष्ट करना कि बैंक ने उसकी संपत्ति के बंधक और इन शेयरों की गिरवी पर कितनी विशिष्ट राशि होगी, आवश्यक नहीं था। मुझे नहीं लगता कि कोई भी न्यायपीठ - अगर मामला इंग्लैंड में किसी न्यायपीठ के पास छोड़ दिया गया होता - तो निष्कर्ष यह होता है कि एक आदमी, "जिस स्थिति में वादी था, वह उन शेयरों की खरीद कीमत का भुगतान करने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं था जो उसने प्रतिवादी 1 और 2 से खरीदे थे।"

उपरोक्त कारणों से, न्यायाधिपतिगण प्रश्न संख्या 4 का उत्तर समर्थनात्मक देते हैं।"(अनुसरित किया गया)

30. इस न्यायालय द्वारा सुखबीर सिंह और अन्य बनाम बृज पाल सिंह और अन्य, एआईआर 1996 एससी 2510; (1997) 2 एससीसी 200 में इन शब्दों के साथ उपरोक्त सिद्धांत का अनुसरण किया गया:

> "5.विधि में किसी प्रकार का संदेह नहीं है और यह कोई शर्त नहीं है कि उत्तरदाताओं के पास धन तैयार होना चाहिए।यह तथ्य कि दोनों पक्षकार विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए उप-पंजीयक के कार्यालय में उपस्थित हुए और याचिकाकर्ताओं के उप-पंजीयक के कार्यालय में उपस्थित होने का इंतजार किया, यह साबित करने के लिए एक सकारात्मक तथ्य है कि उनके पास विक्रय विलेख निष्पादित करने के समय आवश्यक धन था। प्रत्यर्थीगण के पास पंजीकरण के समय भुगतान के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था थी।प्रत्यर्थीगण के लिए यह सिद्ध करना पर्याप्त है कि वह प्रतिफल का भुगतान करने के लिए सक्षम है।यह आवश्यक नहीं है कि वाद की दिनांक से डिक्री की दिनांक तक वे सदैव धन अपने साथ रखें।इसलिए, यह उपयुक्त रूप से स्पष्ट होगा कि अधीनस्थ न्यायालयों ने विधि के सुस्थापित सिद्धांतों पर प्रत्यर्थीगण को विनिर्दिष्ट पालना की राहत देने के लिए उचित रूप से अपने विवेक का प्रयोग किया है।"

31. विधि के इन व्यापक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, जो अब स्पष्ट रूप से सिद्ध हो चुके हैं, अब वर्तमान मामले के तथ्यों का हम परीक्षण करेंगे।

32. शुरू में हमने गौर किया कि यह न्यायालय भारत के संविधान केअनुच्छेद 136 के अंतर्गत संस्थित अपील में साक्ष्य को मानने का कार्य करने के लिए अनिच्छुक है।ऐसा तब और अधिक होता है जब ऐसी अपील उस निर्णय से उत्पन्न होती है, जिसमें तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं।

33. हालाँकि, चूँकि वर्तमान मामले में, अनुमति दे दी गई थी और सुनवाई के समय, पक्षकारों की ओर से विद्वान अधिवाकतागण ने अपनी दलीलों के समर्थन में साक्ष्य पर प्रकाश डाला, हमने यह ज्ञात करने के लिए साक्ष्य का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना उचित समझा कि क्या आक्षेपित निर्णय तथ्यों या विधि की किसी त्रुटि से ग्रस्त है?

34. सबसे पहले वाद की पोषणीयता के बारे में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील पर आते हैं, हमारे विचार में इस दलील में एक से अधिक कारणों से कोई गुण नहीं है।

35. सबसे पहले, जैसा कि प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने सही तर्क दिया था कि वाद की पोषणीयता के संबंध में आपत्ति न तो लिखित कथन में प्रतिवादी द्वारा उठाई गई थी, न ही उच्च न्यायालय के समक्ष पहले

अपील में उठाई गयी और न ही इस न्यायालय में अपील के आधारों में उठाई गयी।

36. दूसरा, चूंकि जब लिखित कथन में कोई दलील नहीं उठाई गई थी और इस कारण से स्पष्टत: कोई विवाद्यक नहीं बनाया गया था और, परिणामस्वरूप, न तो विचारण न्यायालय और न ही उच्च न्यायालय द्वारा याचिका पर कोई निष्कर्ष दिया गया।

37. तीसरा, यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि वाद की पोषणीयता के संबंध में दलील प्रथम बार शुरुआत में अभिकथन (लिखित कथन) में उठाया जाना आवश्यक है तभी ऐसी याचिका पर विचारण न्यायालय द्वारा व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 14 नियम 2 के तहत गुणावगुण पर प्रारंभिक मुद्दे के रूप में निर्णय सुनाया जा सकता है। एक बार जब याचिका पर कोई निष्कर्ष दिया जाता है, तो उसका परीक्षण पहले या दूसरे अपीलीय न्यायालय द्वारा ही किया जा सकता है।

38. यह केवल ऐसे उचित मामलों में, जहां न्यायालय को केवल प्रथम दृष्टया वाद के अवलोकन से ज्ञात होता है कि वाद कानून के किसी भी स्पष्ट प्रावधान द्वारा वर्जित है या किसी भी कानूनी प्रावधान के कारण कानूनी रूप से पोषणीय नहीं है, ऐसे समस्त वाद में न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग से बचने के लिए न्यायिक अवेक्षा को उपयोग में लिया जा सकता है। हालाँकि, वर्तमान वाद में ऐसा नहीं है।

39. चौथा,आई.एस. सिकंदर (सुप्रा) अपीलकर्ता के विद्वान् अधिवक्ता द्वारा उपरोक्त वर्णित में दिए गए निर्णय पर निर्भर करते हुए जो उसमें शामिल तथ्यों पर आधारित है और इसलिए पृथक् है।

40. अंत में, प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत वाद एक अनुबंध दिनांकित 05.03.1989 के विनिर्दिष्ट पालना की मांग करने वाला इस कारण से पोषणीय था कि वाद दायर करने का वाद हेतुक परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 में वर्णित किए गए पालना के लिए अनुबंध में उल्लिखित अवधि की समाप्ति दिनांक 31.12.1989 पर उत्पन्न हुआ था और इसके 10 दिनों के भीतर वाद दायर किया गया था।

41. उपरोक्त कारणों से, हम अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की पहली दलील अयोग्य मानते हैं जो अस्वीकार की जाती है।

42. अब अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दूसरी और तीसरी दलील पर आते हैं, हमारी विचारणीय राय है कि उक्त दलील भी अयोग्य होने के कारण अनेक कारणों से खारिज किए जाने योग्य है।

43. सबसे पहले, वादिनी द्वारा अपने अभिकथनों में विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16 (ग), परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 तथा व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 के परिशिष्ट 'क' के संख्यांक संख्या 47 व 48 की मांग की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया। प्रतिवादिनी ने वादिनी के साथ अनुबंध के निष्पादन पर विवाद प्रस्तुत नहीं

किया और वास्तव में, उसमें कुछ भाग को शामिल करने के लिए वादिनी के साथ पत्राचार किया;तीसरा, वादिनी ने अनुबंध के अपने भाग को पूरा करने के लिए अपनी तत्परता और इच्छा साबित की और पर्याप्त सबूत संलग्न कर विवादित संपत्ति खरीदने की अपनी वित्तीय क्षमता को भी साबित किया;चौथा, वादिनी ने दिनांक 05.03.1989 के अनुबंध के अनुसार विक्रय विलेख के निष्पादन से पहले प्रतिवादिनी को 2 लाख रुपये से अधिक का भुगतान किया था और इसलिए, प्रतिवादिनी को 1,47,200/- रुपये की शेष प्रतिफल राशि का भुगतान करना आवश्यक था;पांचवां, स्वीकार किए गए तथ्यों पर वादिनी द्वारा विक्रय विलेख के निष्पादन की नीयत दिनांक से पहले प्रतिवादिनी को प्रतिफल का 50 प्रतिशत से अधिक का भुगतान किया था; छठा, वादिनी ने यह भी साबित कर दिया था कि उसके पास प्रतिवादिनी को प्रतिफल की शेष राशि का भुगतान करने की अपेक्षित वित्तीय क्षमता थी, क्योंकि उसने जीवन बीमा निगम से ऋण प्राप्त करके धन की व्यवस्था की थी; सातवां, वादिनी ने वादग्रस्त संपत्ति खरीदने के लिए अपनी तत्परता और इच्छा दर्शाने के लिए विक्रय विलेख के निष्पादन की नियत दिनांक के पश्चात् 10 दिवस की अवधि के भीतर तुरंत वाद संस्थित किया;और आठवां, एक बार यह माना गया कि प्रतिवादिनी ने अनुबंध को निष्पादित करने से बचने के लिए उल्लंघन किया है, जबकि वादी ने अनुबंध का अपना भाग निभाया और अपने भाग का पालन करने के लिए तत्पर और इच्छुक थी, विचारण न्यायालय द्वारा उसके पक्ष में

अपने विवेक का प्रयोग करते हुए प्रतिवादिनी के विरुद्ध संविदा की विनिर्दिष्ट पालना के लिए डिक्री पारित करना उचित था।

44. हमारे विचार में, इनमें से किसी भी निष्कर्ष को या तो विकृत या सबूतों को दोषयुक्त करने वाला या विधि के किसी भी प्रावधान के विरुद्ध नहीं माना जा सकता है और न ही इन निष्कर्षों को इस आधार पर खारिज किया जा सकता है कि कोई भी न्यायिक व्यक्ति कभी भी इस तरह के निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है।

45. हमें अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की यह दलील असंगत प्रतीत होती है जब उन्होंने यह तर्क दिया कि वादिनी स्वच्छ हाथों से न्यायालय में नहीं आई थी और इसलिए वाद खारिज किया जाना न्यायोचित है।

46. हमारे विचार में, दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने इस दलील को सही तरीके से खारिज कर दिया। उक्त दलील को कायम रखने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है।दूसरी ओर, हम पाते हैं कि यह प्रतिवादिनी वादिनी से प्रतिफल के रूप में पर्याप्त धन (50 प्रतिशत से अधिक) प्राप्त करने के बावजूद छलपूर्वक विक्रय विलेख निष्पादित करने में टालमटोल किया।

47. हमें अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील में भी कोई बल नहीं पाते जब उन्होंने तर्क दिया कि चूंकि वादिनी अनुबंध में निहित सम्पति के अतिरिक्त कुछ और हिस्सों के संबंध में विक्रय विलेख के

निष्पादन के लिए जोर दे रही थी, जो अनुबंध का हिस्सा नहीं थे और इसलिए यह माना जाना चाहिए था कि वादिनी ने अनुबंध का उल्लंघन किया है, न कि प्रतिवादिनी ने किया।

48. हमारे विचार में, दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने यह मानते हुए इस दलील को सही प्रकार से निरस्त कर दिया कि वादिनी ने उस संपत्ति के संबंध में किसी राहत का दावा नहीं किया जो अनुबंध का विषय नहीं थी और उसने अपनी राहत को केवल उस संपत्ति के संबंध में सीमित कर दिया जिसके लिए अनुबंध किया था। अनुबंध दिनांक 05.03.1989 की विषय वस्तुइस प्रकार हमें दोनों अधीनस्थ न्यायालयों के इस निष्कर्ष से असहमत होने का कोई उपयुक्त आधार नहीं है। जो सही प्रकार से दर्ज किया था।

49. हमारे सुविचारित विचार में, दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने वादिनी के पक्ष में उपरोक्त निष्कर्षों को सही प्रकार से प्रस्तुत किया है और हमें निष्कर्षों से सहमत होने में कोई कठिनाई नहीं है, जिनमें हमारे विचार में इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

50. उपरोक्त विचार विमर्श के प्रकाश में, हमें अपील में कोई बल नहीं मिला है।तदनुसार यह अपील 10,000/- रुपये के खर्चे की मात्रा निर्धारित कर खारिज की जाती है। जो अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को देय होगी।

अपील खारिज की गई।

नोटः- यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी सुरेंद्र सिंह सांदू (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।